1. पाठ का सार

लेखक व उसके मित्र—लेखक व उसके मित्र कंपनी के काम से पन्ना गए। वापसी पर उन्हें जबलपुर से गाड़ी लेनी थी जो सुबह उन्हें उनके घर पहुँचाती। उन्होंने पन्ना से सतना कंपनी की बस से जाना चाहा। क्योंकि सतना से गाड़ी, अब यही बस दिला सकती थी और किसी बस का समय न था।

बस की दशा—इस बस की दशा अत्यधिक जर्जर थी। यह बिल्कुल एक बुजुर्ग की भाँति थी। उसे देखकर ही ऐसा आभास होता था कि यह चलेगी भी कि नहीं। ऐसा लगता था कि यदि इस बस में बैठेंगे तो इसे कष्ट होगा। यह तो केवल पूजा के योग्य थी इसमें कैसे बैठा जा सकता है।

लोगों का विचार—जो लोग इन पाँचों मित्रों को बस पर चढ़ाने आए थे उनका मत था कि जो समझदार लोग होते हैं वे इस बस में सफर नहीं करते क्योंकि इस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। वे सभी इन मित्रों को इस प्रकार देख रहे थे जैसे अंतिम विदाई दे रहे थे। उन्हें लग रहा था कि इस धरती पर जो आया है उसे तो जाना ही है अर्थात् एक न एक दिन मृत्यु को वरण करना ही है चाहे वह राजा हो, भिखारी हो या साधु। आदमी को आगे बढ़ने के लिए कोई कारण तो चाहिए।

लेखक के डॉक्टर मित्र का विचार—लेखक के डॉक्टर मित्र ने सभी डरे हुए मित्रों को सांत्वना देने हेतु कहा कि डरो मत, यह तो अनुभवी बस है। नई बसों पर तो विश्वास करना भी कठिन है। यह तो हमें अपने बेटों की भाँति प्यार से अपनी गोद में लेकर जाएगी।

बस कंपनी के हिस्सेदार—इसी बस में बस कंपनी का एक हिस्सेदार भी सफर कर रहा था। उसका मानना था कि यह बस अच्छी तरह चलेगी।

बस की अंदरूनी हालत व उसका स्टार्ट होना—जब लेखक और उसके मित्र बस में बैठे तो जाना कि बस की अंदरूनी हालत तो बाहरी दशा से भी अधिक खराब थी। खिड़कियों के काफी शीशे तो थे ही नहीं और जो थे उनसे बचकर बैठने का प्रयास करना पड़ा। सीटें पूरी तरह से खस्ता हालत में थीं। जैसे ही बस स्टार्ट हुई तो उसके इंजन ने सारी बस को ही हिला दिया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैसे सारी बस ही इंजन हो।

लेखक द्वारा बस की गाँधीजी के असहयोग व सविनय अवज्ञा आंदोलन से तुलना—जैसे ही बस चली तो लेखक को गाँधीजी के असहयोग व सविनय आंदोलन की याद हो आई क्योंकि शुरू में तो बस का कोई भी हिस्सा किसी भी दूसरे हिस्से से मिलकर काम नहीं कर रहा था, ठीक गाँधीजी के असहयोग आंदोलन की भाँति जिसमें लोगों ने धीरे-धीरे उनका साथ दिया।

आठ दस मील चलने के बाद बस थोड़ी सहज हो गई जैसे उसके सारे हिस्सों के पुर्जों के भेदभाव समाप्त हो गए और

बस तालमेल से चलने लगी। लेखक को ऐसा लगा कि जैसे यह बस गाँधीजी के सविनय अवज्ञा आंदोलन की भाँति कर रही हो जिसमें गाँधीजी ने अंग्रेज़ों द्वारा नमक पर टैक्स लगाने के कारण विरोध किया। उस समय भारतीय वर्ग व जाति भेद में जकड़े थे अलग-अलग धार्मिक संप्रदाय, गुटों आदि के कारण देश विखंडित था लेकिन गाँधीजी ने कुशल ड्राइवर की भाँति सभी को एक करने का प्रयास करके दांडी यात्रा कर समुद्र तट पर नमक बनाकर अंग्रेजों को सबक सिखाया।

लेखक का बस से भरोसा उठना—चलते-चलते अचानक ही बस रास्ते में रुक गई। खोजबीन से पता करने पर पता चला कि पेट्रोल की टंकी में छेद हो गया है। ड्राइवर ने पेट्रोल निकाला और नली के साथ इंजन में डालने लगा। यहाँ लेखक को बस की दशा बिल्कुल ऐसी लग रही थी कि वह चलने के काबिल नहीं है। अब उसे चलाना या उस पर यात्रियों को ढोना उस पर अत्याचार करना है। तभी तो उसके मन में यह भाव आया कि अब बस कंपनी का हिस्सेदार बस के इंजन को गोद में रखकर नली से पेट्रोल पिलाएगा जैसे माँ बच्चे को बोतल से दूध पिलाती है। यानी बस में अब चलने का दम नहीं था। उसका इंजन एकदम कमज़ोर व क्षीण हो चुका था। बड़ी मुश्किल से बस चली वह भी पंद्रह बीस मील की रफ़्तार से। लेकिन रह-रहकर लेखक को अपने अंदर ही अंदर से यह डर था कि बस की कभी भी ब्रेक फेल हो सकती है या स्टीयरिंग टूट सकता है। सफर करते समय प्रकृति के नज़ारे बहुत ही मनभावन लगते हैं। लेकिन लेखक को तो हर पेड़ ही दुश्मन लगता था क्योंकि जब भी कोई पेड़ दिखाई देता तो उसे ऐसा प्रतीत होता कि कहीं बस इसी से न टकरा जाए। यदि कहीं झील दिखाई दे जाती तो उसे ऐसा लगता कि बस इसमें ही गिर जाएगी। इस प्रकार उसका सफर डर-डर कर बीतने लगा।

बस का यकायक रुकना—थोड़ी दूर और चलने के बाद अचानक ही बस फिर रुक गई। ड्राइवर ने बड़ी कोशिश की लेकिन बस थी कि चलने का नाम न लेती थी। ऐसे में बस कंपनी का हिस्सेदार फिर से कहने लगा कि बस है तो बहुत अच्छी लेकिन न जाने कैसा संयोग हुआ है कि यह बंद हो गई है। उस समय लेखक को वह कंपनी का हिस्सेदार बिल्कुल अंग्रेज़ शासनकर्ता की भाँति लगा। जिन्हें केवल अपना ही ध्यान था। भारतीयों की जरा भी परवाह तक न थी ऐसे ही इसे भी बस में सवार यात्रियों की परवाह नहीं थी। हल्की छिटकी चाँदनी में लेखक को वृक्षों की छाया में खड़ी बस बड़ी ही लाचार हालत में लग रही थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कोई बुढ़िया थककर बैठ गई हो और आगे बढ़ने का उसमें साहस न हो। हमें अपने-आप में शर्म महसूस हुई कि कैसे हम उस पर अपना बोझ डालकर आए हैं। यदि अभी इसके प्राण निकल जाएँ तो इस सुनसान जंगल में ही इसका अंतिम संस्कार करना पड़ेगा अर्थात् बस बिल्कुल भी आगे चलने की दशा में न थी।

बस का फिर गंतव्य की ओर चलना—हिस्सेदार साहब ने कुछ प्रयास से उसे चलने लायक बना तो दिया लेकिन वह लेखक को अभी भी एक बुढ़िया की भाँति ही लग रही थी। वह बहुत धीमी गति से चल रही थी। ऐसा जान पड़ता था कि बुढ़ापे के कारण उसकी आँखों की रोशनी कम हो गई और वह सड़क पर धीरे-धीरे रेंग रही हो। वह सभी वाहनों को संकेत देती हुई यही कहती प्रतीत होती कि बेटी तुम निकल जाओ मेरी उम्र अब तुमसे मुकाबला करने की नहीं है।

बस का टायर पंचर हो जाना—बस एक पुलिया को पार कर रही थी कि अचानक ही उसका एक टायर बैठ गया। वह ज़ोर से हिलकर रुक गई। यदि बस थोड़ी भी स्पीड से चल रही होती तो उछलकर नाले में गिर जाती। लेखक ने पहली बार कंपनी के हिस्सेदार को आदर भाव से देखा और यह अहसास दिलाने का प्रयत्न किया कि टायरों की इतनी खराब हालत के बावजूद वे यात्रियों की जान पर खेलकर उन्हें बस में सफर करवा रहे हैं।

बस कंपनी के हिस्सेदार का महान लगना—लेखक को बस कंपनी का हिस्सेदार महान व्यक्तित्व का लग रहा था। लेखक ने सोचा कि इसे तो किसी क्रांतिकारी आंदोलन का नेता होना चाहिए जो केवल अपनी विचारधारा से लोगों को अपने पीछे चलाता है। उसे दूसरे की भावनाओं से कुछ लेना-देना नहीं होता। लेखक सोचने लगा कि यदि बस नाले में गिर जाती तो हम सब मारे जाते। ऐसे में देवता भी शायद इस व्यक्ति का स्वागत करते और कहते कि यह वह महान आदमी है जिसने बस के टायर न बदले लेकिन अपने प्राण दे दिए।

लेखक व उसके मित्रों का निश्चिंतता से बस में बैठना—दूसरा घिसा टायर बस में लगाया गया और बस फिर से चल दी। अब लेखक व उसके मित्र आराम से बैठ गए। उनकी जल्दी पहुँचने की चाहत सब समाप्त हो गई। उन्होंने तो पन्ना पहुँचने की उम्मीद भी छोड़ दी। अब उन्होंने सब कुछ भाग्य पर छोड़कर सोच लिया कि उन्हें तो इसी बस में सारा जीवन गुजारना है। उन्हें ऐसा अहसास होने लगा कि धरती पर जाने का उनका कोई लक्ष्य ही नहीं है। उन्हें तो इसी बस से ही स्वर्ग भी जाना है। उनकी बेचैनी अब समाप्त हो गई थी। बस चल रही थी और लोग बस में हँसी मज़ाक कर रहे थे।

Scanned with CamScanner